International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 **Impact Factor – 7.328**
Peer Reviewed **Bi-Monthly**
Vol.3 No.10 **Nov – Dec 2022**

बालकों के सामाजिक विकास में शिक्षा की भूमिका

सुलोचना कुमारी
शोधार्थी गृह विज्ञान विभाग एल०एन०एम०यू०, दरभंगा।
Corresponding Author- **सुलोचना कुमारी**
Email-sulochnakumari324@gmail.com

सारांश :- शिक्षा और समाज एक दूसरे के पूरक एवं परस्पर संबंधित हैं। वस्तुतः इनका संबंध पारस्परिक कारण और परिणाम का है क्योंकि जैसा समाज होता है वैसी ही शिक्षा होती है और जैसी शिक्षा होती है, वैसा ही समाज होता है। किसी भी राष्ट्र अथवा समाज में शिक्षा समाजिक नियंत्रण, व्यक्तित्व निर्माण तथा सामजिक आर्थिक प्रगति का मापदंड होती है। शिक्षा मानव विकास का प्रांरभिक युग से लेकर वर्तमान युग तक मानव के जीवनपर्यन्त मूलभूत आवश्यकता बनी हुई है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का स्वरूप में जो परिवर्तन हुआ है, उसका उद्देश्य मूलरूप से तकनीकी शिक्षा एंव व्यवसायिक सफलता आर्जित करना रह गया है। हम शिक्षा में किस तरह मानवीय दृष्टिकोण मूल्यों को समाहित करें, कि शिक्षा का वर्तमान परिप्रेक्ष्य का निर्माण हो सके एवं शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। और समाज के सभी वर्गों के लोगों को समानता एवं अधिकारों की प्राप्ति हो सके। इस परिप्रेक्ष्य को शोधकर्ता ने प्रस्तुत करने का प्रयास शोधपत्र में किया है।

कुंजी :- शिक्षा, समानता, विकास, समाज, व्यक्तित्व निर्माण।

प्रस्तावना :- शिक्षा एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य इस प्रक्रिया में उद्भव से अवसान तक शनैः शनैः निरन्तर ज्ञान, अनुभवों, कौशलों एवं व्यवसायिक दक्षताओं को अपनी रूचि, योग्यता, वातावरण, सुविधा, आवश्यकता तथा परिस्थिति के अनुसार सीखता एवं अर्जित करते जाता है। प्राचीनकाल में शिक्षा प्राप्ति के लिए आश्रम पद्धति संबंधी व्यवस्था अनुपम थी। प्रकृति के गोद में समस्त व्यवधान से दूर कर्मशील, योग्य एवं ज्ञानी गुरूओं द्वारा शिक्षा ग्रहण करना सुखद एवं सफल रहा है।

गुरुकुल आश्रम प्रणाली प्राचीन काल की शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता थी। इसके अनुसार विद्यार्थी को दीर्घकाल तक गुरूगृह में रहकर विद्या अध्ययन करना पड़ता था। आचार्य का आश्रम बस्ती से बाहर प्रकृति के शांत, एकांत और सुरम्य वातावरण में स्थित होता था। आश्रम में सभी शिक्षार्थी आपस में भाई-भाई की तरह रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। वे आपस में गुरु-भाई होते थे तथा आश्रम परिवार के एक सदस्य होते थे। आचार्यों का जीवन तथा रहन-सहन सीधा-सरल एवं विचार उच्च होते थे, जिनका प्रभाव सीधे शिक्षार्थी पर पड़ता था।

शिक्षा के द्वारा मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमता को विकसित कर उसे एक योग्य, कुशल और सक्षम व्यक्ति बनाया जा सकता है जो अपनी क्षमता और कौशल द्वारा समाज को समृद्ध बनाकर उसे उत्कृष्ट दिशा में ले जाने का कार्य सकता है। अगर व्यक्ति शिक्षित नहीं होंगे, तो उनका न तो चारित्रिक विकास हो पायेगा और न वे किसी कौशल क्षमता से सम्पन्न हो सकेंगे। ऐसे लोग समाज को उत्कर्ष की ओर नहीं ले जा सकते। संभव है शिक्षा के बिना अज्ञान के अंधकार में भटकता व्यक्ति न केवल समाज के लिए, बल्कि स्वयं के लिए भी खतरा बन जाय।

शिक्षा द्वारा कौशल विकास व्यक्ति को आत्मनिर्भरता प्रदान करता है और समाज को समृद्धिशाली बनाता है। इसीलिए हमारी सरकार आजकल शिक्षा और प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति के कौशल विकास पर काफी जोर दे रही है। तकनीकी शिक्षा कौशल विकास की दिशा में अधिक कारगर सिद्ध होती है, जबकि वैज्ञानिक शिक्षा वैज्ञानिक खोजों आविष्कारों के मार्ग को प्रशस्त करने के साथ-साथ वैज्ञानिक सोच को प्रोत्साहित कर अंधविश्वासों और आस्थामूलक अविवेकपूर्ण नकारात्मक रीति-रिवाजों से व्यक्ति को मुक्त करने में भी सहायक होती है।

गाँधी जी का मानना था कि सच्ची शिक्षा वह है जिससे व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास हो। उनके अनुसार शिक्षा का अर्थ है- मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में से उत्तम तत्वों का विकास करना । शारीरिक और मानसिक शक्तियों के विकास के लिए वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा उपयुक्त होती है और आध्यात्मिक शक्ति के विकास के लिए नैतिक शिक्षा की आवश्यकता होती है। आध्यात्मिक शक्ति के विकास का अर्थ है- आत्मा में निहित उत्तम तत्त्वों का विकास। आत्मा सदगुणों का आश्रयस्थल है। आत्मा के जागृत होने पर दया, करूणा, प्रेम, सहानुभूति, न्याय आदि नैतिक सद्गुण सक्रिय होकर व्यक्ति के जीवन में चरितार्थ होने लगते हैं। नैतिक शिक्षा द्वारा नैतिक चेतना जगाकर व्यक्ति को नैतिक सद्गुणों और नैतिक मूल्यों को जीवन में अपनाने हेतु प्रेरित किया जा सकता है। इसलिए नैतिक शिक्षा को सभी प्रकार के पाठ्यक्रमों का एक अनिवार्य हिस्सा बनाने की आवश्यकता आजकल सभी कोई महसूस कर रहे हैं। मूल्यों के क्षरण की इस घड़ी में नैतिक शिक्षा एक अचूक दवा का काम कर सकती है।

जब कोई समाज-व्यवस्था विकृत हो जाती है, वह ठीक से काम नहीं करने लगती है और समाज निर्माण के मलभूत उद्देश्यों से भटक जाती है, तो उसमें परिवर्तन की आवश्यकता होती है, जिसे समाज-परिवर्तन कहते हैं। इस समाज परिवर्तन के लिए शिक्षा अत्यावश्यक होती है। डॉ. अम्बेडकर ने समाज-परिवर्तन में शिक्षा की महती भूमिका को महसूस करते हुए दलितों (अछूतों) और पिछड़ों के उत्थान के लिए जिस चीज को सबसे अधिक आवश्यक माना था- वह शिक्षा ही थी। उनका दृढ़ विश्वास था कि शिक्षा द्वारा ही पिछड़े वर्गों को अपने शोषण और वंचनाओं का ज्ञान होगा, उसके विरूद्ध एकजुट होने की प्रेरणा मिलेगी और अपनी अस्मिता स्थापित करने के लिए संघर्ष करने का उत्साह प्राप्त होगा। शिक्षा निस्संदेह सामाजिक क्रांति का एक आवश्यक उपकरण है।

बायड एच० बोड का कथन है-"समाज और शिक्षा का एक-दूसरे से पारस्परिक कारणों और परिणाम का संबंध है। किसी भी समाज का स्वरूप उसकी शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित करता है और इस व्यवस्था का स्वरूप समाज के स्वरूप को निर्धारित करता है।

शिक्षा और समाज की अन्योन्याश्रितता इस प्रकार देखी जा सकती है कि पहले प्राचीन समय में आदर्श एवं मूल्यों की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था जिससे प्रत्येक व्यक्ति आदर्श से युक्त होता था, परंतु आज जहां शिक्षा में विज्ञान एवं तकनीकी को महत्व दिया जाने लगा है जिससे नैतिक मूल्यों का स्थान गौण हो गया है। अतः समाज के व्यक्तियों में भी मूल्य विकसित होने की अपेक्षा प्रतिस्पर्धा, धन लोलुपता इत्यादि की भावनाएं बढ़ी है।

इसी प्रकार शिक्षा भी समाज पर निर्भर होती है। उदाहरणार्थ- भारतीय समाज में जनतंत्रीय आदर्शों को स्वीकार किया है। फलस्वरुप यहां की शिक्षा में भी यही प्रयास किया जाता है कि सब व्यक्तियों को बिना किसी

भेदभाव के जनतंत्रीय आदर्शों एवं मूल्यों के अनुरूप शिक्षा प्रदान की जाए।

समाज, समाजशास्त्र तथा शैक्षिक समाजशास्त्र का शिक्षा से घनिष्ठ संबंध है। इसलिए, प्रत्येक समाज अपनी आकांक्षाओं, आवश्यकताओं तथा आदर्शों को सामने रखते हुए शिक्षा की प्रक्रिया को इस प्रकार से नियोजित करता है कि वह अपने आदर्शों को प्राप्त कर लें तथा उसके सभी व्यक्ति उपयोगी सदस्य बन जाएं। यह महान् कार्य उसी समय पूरा हो सकता है जब समाज के सभी व्यक्ति उसके आदर्शों के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन करते हुए उसके साथ अनुकूलन कर सके। शिक्षा इस संबंध में सहायता कर सकती है। यही कारण है कि समय तथा परिस्थिति के अनुसार समाज यह निश्चित करता है कि व्यक्ति को किस प्रकार की शिक्षा दी जाए जिससे वह उपयोगी और श्रेष्ठ सदस्य बनकर समाज को सबल, सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बना सके। स्पष्ट है समाज शिक्षा का महत्वपूर्ण साधन है। दूसरे शब्दों में, समाज अपनी आवश्यकताओं तथा आदर्शों के अनुसार शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित करता है।

शिक्षा तथा समाज का अटूट संबंध है। हम देखते हैं कि जब भी किसी समाज ने शिक्षा की व्यवस्था की है उसने सबसे पहले अपनी आवश्यकताओं तथा आदर्शों को सामने रखा है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जैसा समाज होगा वैसी ही शिक्षा होगी। दूसरे शब्दों में, जिस समाज में जैसे आदर्श होंगे वहां की शिक्षा भी उन्हीं आदर्शों के अनुरूप होगी। यही कारण है कि यदि किसी समाज के आदर्श किसी कारण से बदल जाते हैं तो वहां की शिक्षा भी बदले हुए आदर्शों के अनसार तुरंत बदल जाती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि विभिन्न समाजों में समय-समय पर विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की गई और अब भी की जा रही है। यह बात कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट की जा रही है :

प्राचीन एवं मध्यकालीन समाज - प्राचीन तथा मध्यकालीन समाज में धर्म का बोलबाला था। अतः शिक्षा भी धार्मिक थी। दूसरे शब्दों में, चूँकि प्राचीन तथा मध्यकालीन समाज धर्म प्रधान था, इसलिए उस समाज में धार्मिक सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए व्यक्ति के धार्मिक तथा चारित्रिक विकास पर बल दिया जाता था।

आधुनिक समाज - आधुनिक समाज पर विज्ञान का विशेष प्रभाव है। अतः शिक्षा के द्वारा इस बात पर बल दिया जाता है कि व्यक्ति की चिंतन, तर्क और निर्णय आदि मानसिक शक्तियां पूर्णरूपेण विकसित हो जाएं। ध्यान देने की बात है कि वर्तमान समाज के विभिन्न रूप हैं। प्रत्येक समाज अपने-अपने सिद्धांतों तथा आदर्शों के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करता है। निम्नलिखित पंक्तियों में हम इस बात को स्पष्ट कर रहे हैं कि विभिन्न समाजों में शिक्षा का संबंध किस-किस रूप से दिखाई देता है।

आदर्शवादी समाज - आदर्शवादी समाज में विचार तथा बुद्धि को विशेष महत्व देते हुए आध्यात्मिक विकास के आदर्श को ध्यान में रखकर शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। अतः ऐसे समाज की शिक्षा में चरित्र गठन तथा नैतिक विकास पर बल दिया जाता है।

भौतिकवादी समाज - भौतिकवादी समाज में भौतिक संपन्नता को प्रमुख स्थान दिया जाता है। ऐसे समाज में नैतिक आदर्शों, आध्यात्मिक मूल्यों, रचनात्मक कार्यों तथा विवेक आदि के विकास को कोई स्थान न देते हुए शिक्षा की व्यवस्था केवल भौतिक सुखों की उन्नति के लिए की जाती है जिससे समाज धन्यधान्य से परिपूर्ण हो जाए।

प्रयोजनवादी समाज - प्रयोजनवादियों का विश्वास है कि सत्य सदैव देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। उसके अनुसार सत्य की कसौटी उसका पुनर्निरीक्षण है। अतः यदि कोई सत्य यदि किसी परिस्थिति में सत्य नहीं होता, तो वह असत्य है। चूंकि प्रयोजनवादियों के अनुसार सत्य परिवर्तनशील है,

इसलिए प्रयोजनवादी समाज में विचार की अपेक्षा क्रिया तथा बुद्धि की अपेक्षा परिस्थिति को अधिक महत्व देते हुए शिक्षा की व्यवस्था नवीन मूल्यों के निर्माण हेतु की जाती है।

फासिस्ट समाज - फासिस्ट समाज में राज्य को मुख्य तथा व्यक्ति को गौण स्थान दिया जाता है। ऐसे समाज में व्यक्ति से आशा की जाती है कि वह राज्य के हित में अपने जीवन की आहुति देने में भी संकोच न करें। इस दृष्टि से ऐसे समाज में शिक्षा की व्यवस्था केवल ऐसे व्यक्तियों के लिए ही की जाती है जो अपने हित को त्याग कर समाज की सेवा करते रहे। ध्यान देने की बात है कि ऐसे समाज पर एक ही व्यक्ति अपने शक्ति के बल पर शासन करता है। हिटलर तथा मुसोलिनी ऐसे शासकों के उदाहरण हैं। अतः ऐसे समाज में जन-संधारण की अपेक्षा केवल प्रतिभाशाली व्यक्तियों को ही मान्यता दी जाती है और केवल प्रतिभाशाली बालकों को शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। दूसरे शब्दों में, फासिस्ट समाज के अंतर्गत प्रत्येक बालक को शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर नहीं मिलता। शासक को पूर्ण अधिकार होता है कि वह शिक्षा का स्वरूप अपनी इच्छानुसार जैसा चाहे वैसा निर्धारित करें। विरोध करने वालों को कठोर दंड अथवा मौत के घाट उतार दिया जाता है। इस प्रकार फासिस्ट समाज में शिक्षा बल तथा आदेश द्वारा प्रदान की जाती है। बालकों को छोटी-छोटी भूलों पर कड़े से कड़ा दंड दिया जाता है। गत वर्षों में जर्मनी, इटली जापान फासिस्ट थे। वहां पर शिक्षा की व्यवस्था उक्त सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हए की जाती थी।

जनतंत्रवादी समाज - जनतंत्रवादी समाज में व्यक्ति के व्यक्तित्व को विशेष महत्व दिया जाता है। चूंकि जनतंत्र वह आदर्श है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को एक सुखी, संपन्न तथा समृद्धिशाली जीवन व्यतीत करने के समान अवसर प्राप्त होते हैं, इसलिए जनतंत्रवादी समाज में प्रत्येक व्यक्ति को चिंतन तथा मनन करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह ऐसे कार्य करे जिनसे सबका भला हो। ऐसे समाज में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का आदर करता है तथा प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के विकास में बाधक सिद्ध न होकर मेल-जोल के साथ रहते हुए कंधे से कंधा मिलाकर चलता है जिससे समाज दिन-प्रतिदिन उन्नति के शिखर पर चढ़ता रहे। स्पष्ट है जनतंत्रवादी समाज में प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता, सबके समान अधिकार तथा वैयक्तिक और सामहिक जीवन में विश्वास आदर्श को प्राप्त करने के लिए शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार से की जाती कि प्रत्येक बालक को उसकी रुचियों, रुझानों, योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुसार विकसित होने के लिए ऐसे अवसर मिलते रहे कि उसमें अच्छी आदतें, सामाजिक गुण, प्रेम, सद्भावना, सहयोग, सहनशीलता, सहानुभूति, आत्म-अनुशासन तथा कर्तव्यपरायणता आदि जनतांत्रिक गुणों का विकास हो जाए।

इसी प्रकार शिक्षा यदि समाज के सदस्यों को उपयुक्त व्यवसायों का चयन करने में सहायता देती है, तो इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समाज विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक संस्थाओं का संचालन करता है। प्रत्येक समाज की शिक्षा प्रणाली उसके आदर्शों आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं एवं विचारधाराओं के अनुसार होती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वास्तव में एक के बिना दूसरे का काम चलना कठिन है। समाज अपने हितों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित करता है। शिक्षा समाज के पुराने विचारों का समर्थन कर उसकी नव निर्माण में सहायता देती है।

भारत का हर बच्चा और नागरिक, शिक्षित हो यह सपना है, जिसे आधुनिक भारत के निर्माताओं ने देखा था। महात्मा फुले, सावित्रीबाई फुले, राजा राममोहन

राय, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी, मदनमोहन मालवीय, अली बंधु, जाकिर हुसैन, डॉ. भीमराव अंबेडकर, डॉ. राममनोहर लेहिया आदि आधुनिक भारत के सभी युगपुरुषों व युगमहिलाओं ने शिक्षा पर जोर दिया और इस दिशा में प्रयास किए। लेकिन अफसोस है कि यह सपना अभी तक पूरा नहीं हुआ और निकट भविष्य में भी पूरा होता दिखाई नहीं दे रहा है।

किसी भी देश के सारे नागरिकों का शिक्षित होना, उस देश के विकास की पहली शर्त है। इस पर लगभग आम सहमति है। विचारधारा कोई भी हो-साम्यवादी, समाजवादी, गाँधीवादी, उदारवादी या नव-उदारवादी सब इस एक मुद्दे पर सहमत हैं। शिक्षा कैसी हो, इस पर अलग-अलग राय हो सकती है। इसीलिए भारत के संविधान में दस वर्ष के अंदर देश के सारे बच्चों को शिक्षित करने का लक्ष्य रखा गया था। इसके बावजूद देश आजाद होने के लगभग ६६ वर्ष बीत जाने पर भी यह लक्ष्य पूरा नहीं हो पाया। शायद सरकारों में बैठे लोग ;भारत का शासक वर्ग नहीं चाहते हैं, कि देश के सारे बच्चे भलीभांति शिक्षित हों। विश्व बैंक जैसी अन्तर्राष्ट्रीय ताकतों ने इसमें दखल देकर मामले को और जटिल बनाया है।

सरकार काफी जोर-शोर से 'सर्व शिक्षा अभियान' चला रही है और उसमें काफी पैसा भी खर्च कर रही है। इसके पहले जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) और साक्षरता अभियान भी चला है। काफी कमियों के बावजूद आखिर उनसे हमें शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ने में मदद ही मिली है। इन परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों को उनके सीमित दायरे में देखेंगे, तो उनकी कई उपलब्धियाँ नजर आएगी और कमियों के बारे में लगेगा कि उन्हें दूर किया जा सकता है। लेकिन हमें इन्हें सम्पूर्णता में भारत की शिक्षा की पूरी तस्वीर के साथ देखना होगा। इन्हीं के साथ भारत में नवउदारवादी नीति के तहत शिक्षा में भी निजीकरण और शिक्षा का बाजार बनाने का काम जोरशोर से शुरू हुआ। देश के सारे बच्चों को शिक्षा देने की जिम्मेदारी से सरकार पीछे हटने लगी। सरकारी शिक्षा व्यवस्था को जानबूझकर उपेक्षित करने, बिगाड़ने और उसके मानदंडों को हल्का करने का काम भी इसके साथ ही हुआ। साक्षरता को स्कूली शिक्षा के विकल्प के रूप में भी पेश किया गया। पूरे शिक्षकों एवं सुविधाओं से युक्त व्यवस्थित शालाओं के स्थान पर एक-दो शिक्षक वाली 'शिक्षा गारंटी शाला' तथा प्रशिक्षित-स्थायी शिक्षकों के स्थान पर पैरा-शिक्षकों की बड़े पैमाने पर नियुक्ति भी इसी अवधि में हुई।

निष्कर्ष :- शिक्षा समाज का एक संस्थागत भाग है वह समाज में तीन प्रमुख कार्य करती है। प्रथम वह आधुनिक समाज का विश्लेषण करती है। द्वितीय वह उभरते हुए समाज को चिन्हित करती है। तृतीय उन समस्त शक्तियों को पहचानती है और मजबूती प्रदान करती है जो उभरते हुए समाज को साकार कर सके। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है। उत्तम शिक्षा ग्रहण करके ही व्यक्ति समाज का उत्तरदायी घटक बनता है। शिक्षा से ही व्यक्ति सही रूप में चिंतन करना सीखता है। शिक्षा समाज का दर्पण है बच्चे के विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा के द्वारा ही हमारी कीर्ति का प्रकाश चारो ओर फैलता है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाकर कमल का फूल खिल उठता है तथा सूर्य अस्त होने पर कुम्हला जाता है ठीक उसी प्रकार शिक्षा के प्रकाश को पाकर प्रत्येक व्यक्ति कमल के फूल की तरह खिल उठता है तथा अशिक्षित रहने पर दरिद्रता तथा शोक एवं कष्ट के अन्धकार में डूबा रहता है।

संदर्भ सूची

१. पाण्डेय, डॉ० रामशकल, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, २००८, पृ०सं०-४२९.

२. सक्सेना, छण्त स्वरूप, संजय कुमार, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ, २०१३, पृ०सं०-६६७.

३. गुप्ता, डॉ० अल्का, शिक्षाशास्त्र का आधार सामग्री, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, २०१७, पृ०सं०-२०५.

४. सक्सेना, छण्त स्वरूप, संजय कुमार, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ, २०१३, पृ०सं०-६६९.

५. इंडिया टूडे मासिक पत्रिका, नोएडा, नवम्बर २०१७

६. शर्मा, आर०ए०, भारतीय शिक्षा का विकास, २००७

७. आधुनिक भारतीय शिक्षा, अप्रैल २०१६, एनसीईआरटी

८. अध्यापक शिक्षा की शोध पत्रिका, २०१५, एनसीईआरटी

९. पाठक, पी०डी०, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, २००६